3. औदात्त्य-सिद्धान्त

औदात्त्य-सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक 'लांजाइनस' माने जाते हैं। कुछ विद्वान् इन्हें ई.पू. तीसरी शती के यूनानी विचारक मानते हैं और कुछ इन्हें ईसा की पहली शताब्दी में रोम का रहनेवाला काव्यशास्त्री मानते हैं। कुछ भी हो, अरस्तू के पश्चात् प्राचीन काल के विचारकों में 'लांजाइनस' का स्थान उत्कृष्ट है। इन्होंने 'औदात्त्य-सिद्धान्त' की प्रतिष्ठा की; क्योंकि इनके समय में साहित्य में गिरावट आ गयी थी। 'लांजाइनस' के ग्रन्थ *पेरि हुप्सुस (Peri Hupsous)* की खोज 16वीं शताब्दी में हो सकी और इसका प्रथम संस्करण 1554 ई. में प्रकाशित हो सका, जो अभी अपूर्ण माना जाता है। इस 'पेरी हुप्सुस' में जिसका अंग्रेजी अनुवाद 'दि सब्लाइम' (The Sublime) किया गया है, औदात्त्य-सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की गयी है। यह औदात्त्य-सिद्धान्त काव्य के लिए महत्त्वपूर्ण है। लांजाइनस ने औदात्त्य-तत्त्व की प्रतिष्ठा करके काव्य को गरिमामय और भव्य बनाने का प्रयास किया है। इसमें इस बात पर प्रकाश डाला

गया है कि किन बातों के समावेश से काव्य में औदात्त्य की प्रतिष्ठा की जा सकती है। लांजाइनस की औदात्त्य-सम्बन्धी अवधारणा बड़ी व्यापक है तथा साहित्येतर इतिहास, दर्शन और धर्म जैसे विषयों को भी समाविष्ट कर लेती है। लांजाइनस ने औदात्त्य की प्रेरणा कैसिलियस (Caecilius) के निबन्ध 'उदात्त' से ली थी जिसका विवेचन करके इन्होंने विकसित औदात्त्य-सिद्धान्त की स्थापना की। उन्होंने इसके द्वारा मानव-मूल्यों को पतन से बचाने और आत्मा को उदात्त बनाने के लिए यह कार्य किया। लांजाइनस का औदात्त्य तत्त्व, उदात्त शैली नहीं है, वरन् इसमें उदात्त विषयवस्तु, विचार और भाव तथा भाषा एवं अलंकार सभी कुछ शामिल हैं। लांजाइनस के विचार से औदात्त्य वाणी का उत्कर्ष, कान्ति और वैशिष्ट्य है जिसके कारण महान् कवियों, इतिहासकारों, दार्शनिकों को प्रतिष्ठा, सम्मान और ख्याति प्राप्त हुई है क्योंकि इसी से उनकी कृतियाँ गरिमामय बनी हैं और उनका प्रभाव युग-युगान्तर तक प्रतिष्ठित हो सका है। उनके उदात्त-सिद्धान्त के तत्त्व आगे दिये जाते हैं।

(क) विषयगत गरिमा एवं महान् अवधारणाओं की क्षमता : लांजाइनस का यह निश्चित और स्पष्ट मत है कि किसी काव्य या रचना को महान् होने के लिए यह आवश्यक है कि कवि और रचनाकार के भीतर महान् अवधारणायें एवं उच्च विचार अवस्थित हों। उसकी कल्पना उच्च और व्यापक हो, तभी वह मानव-प्रकृतिगत क्षुद्रताओं से उसे ऊपर उठा सकता है। यदि वह स्वयं क्षुद्र और निम्नकोटि के विचारों से युक्त है, तो वह महान् कृति की रचना नहीं कर सकता। कवि की इस बात का प्रमाण, सबसे पहले उसके विषय से मिलता है। यदि विषय महान् है, तो कृति के महान् होने में वह एक महत्त्वपूर्ण अंग को प्रदान करता है। इस कार्य के लिए कवि को महाकवियों की महान् कृतियों का अनुशीलन करना चाहिए। यदि कवि में प्रतिभा है, तो उनके अनुशीलन से गरिमामय विषय को चुनना सुगम होता है। विषय को गरिमापूर्ण बनाने के लिए उसको विस्तृत एवं गतिमय रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक है। लांजाइनस का कुछ ऐसा विचार है कि गरिमामय विषय, सामान्य न होकर असाधारण होता है। इसकी प्रेरणा उसे प्रकृति की विराटता और असाधारणता से मिलती है। प्रकृति के विराट् स्वरूप और रहस्य को देखकर हमारे मन में उदात्त भाव और विचार जागृत होते हैं।

(ख) उत्तेजित तीव्र आवेग : लांजाइनस के अनुसार आवेग दो प्रकार के होते हैं—एक निम्न आवेग और दूसरे भव्य आवेग। जब भव्य आवेग मनुष्य के अन्तःकरण में क्रियाशील होते हैं, तब उसकी आत्मा का उत्कर्ष होता है और उदात्तता आती है। निम्नकोटि के आवेगों के प्रबल होने पर उसकी आत्मा मलिन होती है और नीचता जाग्रत् होती है। लांजाइनस के मत से उत्साह का आवेग औदात्त्य-तत्त्व को प्रेरित करता है। कवि में उसके उत्पन्न होने से वाणी में ओज और कान्ति उत्पन्न होती है। इसके विपरीत शोक, भय, दया, घृणा आदि से आत्मा संकुचित होती है। इसके साथ ही साथ यह भी सत्य है कि कवि में अगर प्रतिभा तथा कलापूर्ण अभिव्यक्ति

की क्षमता है, तो अन्य भावों में भी औदात्त्य का समावेश हो सकता है। प्रकृति में भावों की विविधता इसके लिए भी प्रेरक है।

(ग) अलंकार-योजना : लांजाइनस के मत से औदात्त्य के सम्पादन के लिए तीसरा साधन 'अलंकार-योजना' है। अलंकारों का प्रयोग काव्य-रचना में प्राचीन काल से चला आता है, पर लांजाइनस का विचार है कि अलंकारों का प्रयोग चमत्कार-प्रदर्शन के लिए नहीं, वरन् भावों के उत्कर्ष के लिए होना चाहिए। भावों के उत्कर्ष के हेतु अलंकार तभी सहायक होते हैं, जब वे कविता में जबरदस्ती न ठूँसे जायँ; वरन् उनका प्रयोग इस प्रकार हो कि कवि जिन भावों को जिस तीव्रता से अनुभव कर रहा है, उन भावों को उसी तीव्रता से अपने काव्य के पाठकों या श्रोताओं के भीतर भी पहुँचा सके। परन्तु पाठकों का ध्यान अलंकार की ओर न जाकर केवल भाव में रम जाये। अनायास पाठकों के हृदयों में भाव जाग्रत् और उत्तेजित करने की सहज क्षमता जिस अलंकार-योजना में होती है, वही श्रेष्ठ है। लांजाइनस के विचार से अलंकार स्वतः कवि के मनोभावों में निहित होते हैं और वे उसके कलात्मक बोध के प्रतीक हैं। इसी से वे मानव-प्रवृत्तियों की सही व्याख्या के साधन बनते हैं। यह तभी सम्भव होता है, जब अलंकारों का प्रयोग स्थान, काल, अभिप्राय, रीति-रिवाज और वातावरण के अनुरूप हो। अलंकार-योजना के शीर्षक के अन्तर्गत लांजाइनस ने वक्रोक्ति की कुछ बातों को भी ले लिया है, जैसे विलक्षण वाक्य-रचना, काल, लिंग, वचन में बदलाव, व्याजोक्ति, समासोक्ति आदि। परन्तु लांजाइनस ने रूपक, उपमा आदि अलंकारों को शब्दावली (Diction) के अन्तर्गत रखा है।

(घ) भव्य शब्दावली एवं पद-रचना (Noble Diction) : इसके अन्तर्गत लांजाइनस ने शब्दावली, पद, रूपक, उपमा आदि पर विचार किया है। वे विचारों के अनुरूप पद-रचना के पक्षपाती हैं। उनके विचार से विचार और पद अन्योन्याश्रित हैं। न महान् विचार हल्की, क्षुद्र बाजारू शब्दावली में कहे जा सकते और न हल्की सामान्य शब्दावली महान् विचारों को प्रभावपूर्ण ढंग से सम्प्रेषित ही कर सकती है। हल्की शब्दावली वह है जो विषय और सन्दर्भ के अनुकूल न हो। वे शब्दाडम्बर के भी पक्ष में नहीं हैं। उदात्त कलाकृति के लिए शुद्ध, उपयुक्त और प्रभावशाली शब्दावली अपेक्षित है। इस शब्दावली में प्रसंगानुसार, रूपक और उपमा का व्यवहार किया जा सकता है। उनके विचार से सुन्दर शब्दावली भव्य विचारों के लिए प्रकाश का काम करती है। भाषा और शब्दावली के प्रसंग में उनकी मान्यता है कि वही शब्दावली और पद-विन्यास रचना के लिए उपयुक्त है, जो उसमें निहित विचारों और भावों को भव्य प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति दे सके।

(ङ) गरिमामय उदात्त संरचना (Dignified and elevated synthesis) : वास्तव में शब्द, पद, अलंकार आदि तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, परन्तु महत्त्व किसी रचना में गूँथे जाने या पिरोये जाने के ताने-बाने पर निर्भर करता है। सफेद धागे को विविध रंगों में रँगकर, उनको ताने-बाने में पिरोकर जिस प्रकार अनेक डिजाइनों के फूल,

बूटेदार वस्त्र बनाये जा सकते हैं, उसी प्रकार शब्दावली और अलंकारों की उपर्युक्त संरचना समन्वित एवं उचित प्रयोग के द्वारा एक कलापूर्ण कृति बन जाती है। समन्वय, सामंजस्य और औचित्य ही किसी भी काव्यकृति को गरिमामय बनाते हैं। यह संरचना या सामंजस्य अलग कोई वस्तु नहीं है, वरन् विचारों को समुचित शब्दावली, अलंकारों के उचित एवं प्रभावशाली संगुफन का ही नाम है। रचनाकार की कला और प्रतिभा का वैशिष्ट्य भी इसी में देखा जा सकता है। इस प्रकार लांजाइनस का औदात्त्य, गरिमामय विषयवस्तु, उदात्त धारणाओं, सहज समुचित अलंकार-योजना, उत्कृष्ट भव्य शब्दावली का समुचित, प्रभावशाली एवं कलापूर्ण संगुफन की परिणति ही है।

उपर्युक्त पाँच तत्त्व साधन हैं जिनसे उदात्त-तत्त्व का सम्पादन होता है। इस उदात्त-तत्त्व की प्रक्रिया काव्य की प्रमुख विशेषता है। लांजाइनस के विचार से काव्य का महत्त्व उसमें निहित शिक्षा, नैतिकता, दर्शन, ज्ञान आदि में तो है ही, परन्तु उसका मूल व्यापार इनसे भिन्न और ऊँचा है। उनके विचार से काव्य में एक ऐसी शक्ति होती है, जो बुद्धि और तर्क से ऊपर है। काव्य में एक ऊर्जा, एक तेज होता है, जो कवि के द्वारा उत्पन्न किया जाता है और पाठक के मन को मुग्ध कर लेता है। पाठक उसमें रमकर स्वयं अपने में उस तेज के संचार का अनुभव करता है। यह कवि के उदातीकरण या औदात्त्य-सम्पादन की प्रक्रिया का संकेत करता है जिसे लांजाइनस ने 'एक्सतासिस' (Ekstasis) कहा है। यह तर्क द्वारा समझाने की प्रक्रिया से अलग संक्रमण या सम्प्रेषण की प्रक्रिया है, जिस पर आगे चलकर आइ.ए. रिचर्ड्स ने विस्तार से विचार किया है। यह सम्प्रेषण की बात लांजाइनस की विशिष्ट और मौलिक सूझ है।

लांजाइनस ने काव्य में औदात्त्य के सम्पादन के जो साधन बताये हैं, उनके साथ ही यह भी बताया है कि इनको लाने के साथ-साथ औदात्त्य के बाधक दोषों का परिहार भी आवश्यक है। ये दोष हैं, शब्दाडम्बर, बचकानापन या अनुचित वर्णन-विस्तार, भावाडम्बर, नवीनता दिखाने का प्रयत्न आदि। ये दोष तो सभी काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में वर्जित हैं जिन पर लांजाइनस ने विस्तार से प्रकाश डाला है। ये दोष कवि में प्रतिभा न होने पर उसके दिखावे का ढोंग करने से उत्पन्न होते हैं।

लांजाइनस का औदात्त्य-सिद्धान्त, काव्य के समझने के कई मार्गों और अभिगमों (approaches) को प्रस्तुत करता है। साथ ही यह काव्य-समीक्षा की विविध कसौटियाँ भी देता है जिनमें सम्प्रेषण, कवि-प्रतिभा, अलंकार-योजना तथा काव्य की वह विशिष्टता है जिससे वह सबको, सर्वदा आनन्द देता है। उनके विचार से काव्य में उन्नयन की शक्ति होती है, यदि उसमें उदात्त-तत्त्व का समावेश हो।

उस प्राचीन काल में लांजाइनस का यह सिद्धान्त कवि और समीक्षक दोनों को प्रेरणा देनेवाला है। यह काव्य के महत्त्व और विशेषताओं पर विस्तार से प्रकाश डालता है। अतः अन्य प्राचीन सिद्धान्तों की अपेक्षा, यह काव्य-रचना के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण है।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र-इतिहास सिद्धान्त और वाद
डॉ० भगीरथ मिश्र
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी